इकाई 1 अद्वैत पद्धति में एकत्व निरूपण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 एकत्व का इतिहास

1.3 अद्वैत वेदान्त में सत्य

1.3.1 व्यावहारिक सत्ता

1.3.2 पारमार्थिक सत्ता

1.4 ब्रह्म

1.5 अध्यास

1.6 माया

1.7 सारांश

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप –

- सत्ता की परमार्थता की कसौटी जान सकेंगे।
- विभिन्न सत्ताओं को उसकी कसौटी पर कर सकेंगे।
- ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता को समझ सकेंगे।
- ब्रह्म के स्वरूप एवं तटस्थ लक्षण से परिचित होंगे।
- जगत मिथ्यात्व के यथार्थ को जान सकेंगे।
- जीव एवं ब्रह्म के सम्बन्ध से अवगत होंगे।
- माया के स्वरूप एवम् उसके कार्यों को समझ सकेंगे।
- अध्याय एवम् उसकी प्रक्रिया से परिचित होंगे।

1.1 प्रस्तावना

हलायुध कोश में अछयवाद का उल्लेख है और अदृयता से एक मात्र आत्मा की ही सत्यता का ग्रहण किया गया है। वाचस्पत्यम् में अद्वैत शब्द का निर्वचन है – द्विधा इतम् द्वीतं तस्य भाव: द्वैतम् भेद: अभावार्थे द्वैंत भेदो नास्ति यत्र तत्र अद्वेतम् अर्थात अद्वैत का अर्थ है द्वैत विरोधी या भेद रहित तत्त्व। अद्वैत पद्धति परमार्थ रूप से भेद रहित या द्वैत विरोधी एक तत्त्व का प्रतिपादन करती है। इसमें नानात्व को मिथ्या कहा गया है।

अद्वैत सिद्धान्त का बीज संहिताओं एवम् उपनिषदों में प्राप्त होता है। गौड़पादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् पर 'माण्डूक्य-कारिका लिखकर अद्वैत अर्थात एकत्व का प्रतिपादन किया। शंकराचार्य के बाद भी अनेक दार्शनिकों ने अद्वैत तत्त्व की परमार्थता बतलाने की कोशिश की है, किन्तु अद्वैत तत्त्व को एक सिद्धान्त के रूप में स्थापित करने का श्रेय आचार्य शंकर को ही है। उन्होंने श्रुति, स्मृति, ब्रह्मसूत्र, अनुभव एवं तर्क के बल पर परमार्थ तत्त्व के एकत्व का निरूपण किया है। उनकी महत्ता इस बात से समझी जा सकती है कि जहाँ भी अद्वैत की चर्चा होती है शंकराचार्य के विचार एक मानदण्ड के रूप में आ ही जाते हैं।

सामान्यत: तत्त्व मीमांसा के क्षेत्र में वस्तुवादी अनेकत्ववाद एवं द्वैतवाद को तथा प्रत्ययवादी अद्वैत को स्वीकार करते हैं, किन्तु शंकराचार्य के दर्शन में अनुभव का तार्किक विश्लेषण कर भेदों के मिथ्यात्व और एकत्व की शास्त्र सम्बन्धित परमार्थ स्वीकृति पाते हैं। इस दृष्टि से इनका एकत्व दर्शन और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत इकाई में यद्यपि अन्य दार्शनिकों के भी एकत्व प्रसङ्ग होगें, पर विचार के केन्द्र में शंकराचार्य का एकत्व दर्शन ही रहेगा।

1.2 एकत्व का इतिहास

सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में एकत्व के बीज प्राप्त होते हैं, जहाँ पर बताया गया है कि एक ही सत् को विद्वान लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं – 'एकं सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति।[1] इस मन्त्र में एकम् तथा सत् पद अद्वैत हैं, भेद रहित हैं। यहाँ एक तत्त्व की अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है। 'बहुधा वदन्ति के रूप में जो एकत्व में अनेकत्व का कथन किया गया है वह अद्वैतमत के विवर्तवाद का बीज है। पुरुष सूक्त[2] के प्रथम तीन मन्त्रों में वैदिक ऋषि सम्पूर्ण जगत को एक विराट पुरूष के रूप में देखता है। पुरुष के अनन्त मस्तक, नेत्र और पैर हैं वह सम्पूर्ण पृथ्वी में व्याप्त होकर भी उससे परे है। जो कुछ है और जो कुछ होगा, सब वही पुरुष है। वह एक पद से संसार में है और उसका तीन पद द्युलोक में है। पुरुष सूक्त में मात्र एकत्व का ही निरूपण नहीं है वरन् उन परम पुरुष की झलक है जिसकी सत्ता विश्व के भीतर और बाहर भी है। मानवीय इतिहास में यह अद्वैत की परम अनुभूति है। अद्वैत पद्धति के एकत्ववाद में समाज जगत् प्रपञ्च का निषेध कर अनिर्वचनीय रूप से परम तत्त्व की प्रतिष्ठा करने की जो प्रक्रिया प्रचलित है वह ऋग्वेद के 'नासदीय' सूक्त में परिलक्षित होता है। सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है –'जो कुछ है सो पहले नहीं था, जो कुछ नहीं है सो भी नहीं था, न पृथ्वी थी न आकाश था न उसके परे रचित लोक।[3] सूक्ष्म के अन्तिम मन्त्र में कहा गया – ये विभिन्न सृष्टियां किस प्रकार हुई? इन्हें किसने रचा? इन सृष्टियों का जो स्वामी है वह दिव्य धाम में निवास करता है। वही इसकी रचना के विषय में जानता है, यह भी सम्भव है कि उसे भी यह ज्ञान न हो।[4]

यजुर्वेद भी परमतत्त्व के एकत्व का प्रतिपादन करता है। एक मन्त्र में एक ही तत्त्व को इन्द्र, वरूण, अग्नि आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। अथर्ववेद के 'स्कम्भ'[5] और

[1] ऋग्वेद 1/164/46

[2] ऋग्वेद मण्डल, 10, सूक्त 90

[3] नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासी द्र जो नो व्योया परोयत् 10/129/1

[4] इयं विसृष्टिर्यत आबयूव यदि वा दघेयदि वा न 1 योडस्थाध्यदन: परमे व्योयन त्सो अगड़ वेद वान वेद। म 10/129/7

[5] अर्थववेद काण्ड 10, सूक्त 7 एवं 8

'उच्छिष्ट्[6]' सूक्तों में एकत्व का प्रतिपादन है। स्कम्भ सूत्र में ब्रह्म की ही अन्यतम संज्ञा 'स्कम्भ' है जो सबमें व्याप्त है, एक है, आश्रय है और द्यु, पृथिवी एवम् अन्तरिक्ष सहित प्रदेशों को धारण करने वाला है, भूत, भविष्य एवं वर्तमान सबका अधीश्वर है। उच्छिष्ट सूत्र में 'उच्छिष्ट' नाम द्वारा ब्रह्म का ही प्रतिपादन है। उच्छिष्ट का अर्थ है बचा हुआ, शेष पदार्थ। दृश्य प्रपञ्च का निषेध करने के अनन्तर जो अवशिष्ट रहता है वही उच्छिष्ट है, अर्थात् बाधा रहित परब्रह्म जिससे सभी उत्पन्न हैं।[7]

उपनिषदें जिनका अपर नाम वेदान्त भी है, प्रधान रूप से अद्वैत का प्रतिपादन करती है और नानात्व निषेध करती हैं। 'एकमेवाद्वितीम्' ब्रह्म (छा. उ. 2/2/2), ब्रह्मैवेदं विश्वम्' (मुण्डक उ. 2/2/11) 'सर्वं खाल्विदं ब्रह्म' (छा.3/14/1) 'आत्मा का इदमेक एवाग्र आसीत्' (ऐतरेम1/1) एको हंस भुवनस्य मध्ये' (खे. उ. 6/6/16) 'आत्मैवेदमग्र आसीत्' (वृ. उ. 1/4/1) 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा-द्वितीयम्। (छा. 6/2/11) इत्यादि रूप से एकत्व का निर्देश उपनिषदें करती हैं। वे नेह नानात्रि किण्चन' (वृह 4/4/19), क. 2/1/11) मृत्यो: मृत्युम् आप्नोति? य इह नानेव पश्यति (कठ 2/1/10) आदि रूप से नानात्व का खण्डन भी करती हैं।

श्रीमद्भगवगीता में –यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति (6/30), अनादिमत्परं ब्रह्म सत्तन्नासदुच्यते (13/12) त्वमक्षरं सदसन्तमर यत् (11/37) मन्त:परतरं नान्यत्किच्दिस्ति धनञ्जय (7/7) बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च (13/15) अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव: प्रलयस्तथा (7/6) अहं सर्वस्य प्रभवो मन्त: सर्वं प्रवर्तते (10/7) विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् (10/42) इत्यादि भगवान् द्वारा एकत्व का प्रतिपादन करते हैं।

उपनिषदों का सार संग्रहकर व्यास ने 'ब्रह्म सूत्र' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसे 'वेदान्त सूत्र' भी कहा जाता है। उपनिषद् गीता एवं ब्रह्म सूत्र ये तीन वेदान्त के प्रस्थान माने जाते हैं और इनकी संज्ञा प्रस्थानतयी पड़ गयी। ब्रह्म सूत्र पर भाष्य लिखकर अनेक आचार्यों ने अपने-अपने दार्शनिक मतों की पुष्टि की है। आचार्यों ने अपने मत की स्थापना हेतु प्रस्थानत्रयी को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य शंकर ने प्रमुख उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर अद्वैतवाद का परचम लहराया। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करके भास्कर ने भेदाभेद, रामानुज ने विशिष्ट अद्वैत, निम्बार्क ने द्वैताद्वेत, श्रीकण्ठ ने शैव-विशिष्टाद्वैत, श्रीपति ने वीरशैव विशिष्टाद्वैत वल्लभ ने शुटाइेव, विज्ञान मिक्षु ने अविभागाद्वैत का प्रतिपादन किया। किन्तु वास्तविक एकत्व शंकराचार्य के अद्वैत में ही पूर्णता के साथ परिलक्षित होता है।

शंकराचार्य के पूर्व माण्डूक्योपनिषद पर 'माण्डूक्यकारिका' लिखकर गौड़पादाचार्य ने एकत्ववाद की व्याख्या की। इनकी कारिकायें आगम प्रकरण, वैतथ्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण और अजातशान्ति प्रकरण में विभक्त है। इन्होंने अजातिवाद का सिद्धान्त दिया। अजातिवाद को वे श्रुति सिद्ध सिद्धान्त मानते हैं। कोई उत्पत्ति नहीं होती, कोई भेद नहीं है। अद्वैत तत्त्व भेद रहित होने पर भी भाषा के कारण भेदमय प्रतीत होता है। जगत् स्वजवत मिथ्या है। ज्ञान प्राप्ति के बाद सम्पूर्ण जगत की निवृत्ति हो जाती है, द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। ब्रह्म ही एकमात्र अद्वैत तत्त्व है। गौड़पादाचार्य आचार्य शंकर के गुरू के गुरू थे और इनके विचारों का शंकर पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

[6] अर्थर्ववेद काण्ड 11 सूक्त 7

[7] उच्छिष्टा जज्ञिरे सर्वे। अथर्व 11/7/27

शंकराचार्य के बाद अद्वैतवाद विकास में सुरेश्वराचार्य, पद्मपादाचार्य, वाचस्पति मिश्र, प्रकाशात्मयति, श्रीहर्ष, चित्सुखाचार्य, विधारण्यमुनि, मधुसूदन सरस्वती, अप्पच दीक्षित आदि आचार्यों ने अपना-अपना स्तुत्य योगदान किया है।

1.3 अद्वैत वेदान्त में सत्य

अद्वैत सिद्धान्त में सत्य को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि 'सत्य' वह है जो उत्तर कालीन ज्ञान से बाधित न हो। जो अबाध्य है वही सत्य है – 'सत्यत्वं बाधारायहित्याद्'। वेदान्तियों ने सत्य की परिभाषा को और स्पष्ट करने के लिए अबाध्य के पूर्व त्रिकाल शब्द की योजना की। अत: सत्य की शास्त्रीय परिभाषा बनीं त्रिकालाबाधित्व सत्यम्। भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् इन तीनों कालों में तथा जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में जिसका स्वरूप बाधित न हो, अर्थात् एक रूप में अवस्थित रहे वही सत्य है। शंकराचार्य ने स्वयं लिखा – 'एक रूपेण व्यवस्थितोऽर्थ: परमार्थ:। सत्य का स्वरूपकभी व्यमिचरित नहीं होता, सदा एक रस रहता है – यदपेण मन्त्रिश्चितं तद्रपं न कभिचरित तत् सत्यम्।

सत्ताओं का परीक्षण एवं निर्धारण - सत्य की कसौटी 'अबाधित्व के आधार पर विविध सत्ताओं का परीक्षण कर उनका सत्य मूल्य निर्धारण किया जा सकता है। इस कसौटी के आधार पर एक मात्र परमार्थ सत्ता ब्रह्म की है इसके अतिरिक्त प्रतियोगिक सत्ता भेद की एवं व्यावहारिक सत्ता जगत् की है। अलीक सत्ता शब्द भारत है। इनका विवेचन अग्र-लिखित है।

i) **अलीक सत्ता** - अलीक वह है जो है ही नहीं। केवल नाम है। न प्रतिदिन व्यवहार न परमार्थ। खंपुष्प(आकाश का फूल) , बन्ध्या-पुत्र, शशश्रृंड्ग खरगोश) के सींगआदि (इसके उदाहरण है। आकाश का फूल नहीं होता, बन्ध्या शब्द के साथ पुत्र शब्द असंगत है, खरगोश के सींग नहीं होते। यह अलीक है, तुच्छ है।

ii) **प्रतिमानिक सत्ता** –प्रतिमानिक सत्ता से अभिप्राय उस सत्ता से है जो प्रतिकाल में सत्य प्रतिमानित होता है परन्तु उत्तर काल में बाधित हो जाता है। इसका प्रसिद्ध उदाहरण है रज्जु सर्प और शुक्ति रजत। कंधों में टेढ़ी मेढ़ी रस्सी पड़ी हो और उसमें सर्प की प्रतीति हो तो यह प्रतिमानिक है किन्तु उसी क्षण कोई व्यक्ति प्रकाश लेकर आ जाये तो प्रकाश में ईष्टा को स्पष्ट रूप से रस्सी का बोध हो जायेगा और इसी के साथ सर्पज्ञान की जो उससे पूर्व प्रतीति हुई थी वह खण्डित हो जायगी। खण्डित ज्ञान बाधित ज्ञान है। बाधित ज्ञान से रज्जु में सर्प की प्रतीति सत्य नहीं है, असत्य है, प्रातिमानिक मात्र है। वह सर्प तभी तक है जब तक प्रकाश नहीं है। प्रकाश के आते ही पूर्व ज्ञान खण्डित हो गया है और सर्प ज्ञान समाप्त हो गया।[8] इसी प्रकार सीपी में दूर से देखने पर चाँदी की प्रतिति होती है। किन्तु नजदीक पहुँचने पर चाँदी का ज्ञान खण्डित हो जाता है। अत :रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत परमार्थ होना प्रतितिकाल तक ही है, प्रातिमानिक है।

1.3.1 व्यावहारिक सत्ता: जगत्-व्यवहार एवम् उसका मिथ्याकाल

व्यावहारिक सत्ता इस जगत् के समस्त व्यवहार, गोचर पदार्थों में रहती है। जगत् के पदार्थों में पांच धर्म होते हैं – अग्नि, भाति, प्रिय, नाम तथा रूप। प्रथम तीन ब्रह्म के लक्षण हैं और

[8] रज्जवात्मना डवबोधात प्राक सर्प: सन्नेवभवति। सतो विधमानस्यं वसानो रजावादे: सर्प दिव द् जन्म भुज्यते।। माण्डूक्य कारिका भाष्य 3/27

अन्तिम दो जगत् के।[9] जगत के सभी पदार्थों का कोई न कोई नाम रखा होता है, कोई रूप या आकार भी होता है। इन नाम-रूपात्मक वस्तुओं की सत्ता व्यवहार के लिए आवश्यक है, जगत व्यावहारिक है। किन्तु जाइका स्वरूप क्या है? अद्वैत सिद्धान्त में इसे मिथ्या कहा गया है। मिथ्या वह है जो कभी रहे, कभी न रहे। यहां रहने का तात्पर्य केवल प्रतीति से है।[10] जगत् की उत्पत्ति होती है, अत: वह आदि में नहीं है। ब्रह्म ज्ञान से उसका बोध होता है, अत: अन्न में भी नहीं है। केवल मध्य में ही अवस्थित है। किन्तु सिद्धान्त है – 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमाने इप्रित् तथा अर्थात् आदि और अन्न में नहीं है। वह वर्तमान (मध्य) में भी नहीं है। मध्य में शामिल होने वाली वस्तु वस्तुत आदि और अन्न की तरह मध्य में भी अविधमान ही है। वेदान्त डिण्डिम नामक ग्रन्थ में नृसिंह सरस्वती ने भी इसी तथ्य की व्याख्या की –"यन्नादौ यच्च नास्त्यन्ते तन्मध्ये भातमप्यत्। अतो मिथ्या जगत् सर्वमिति वेदान्तडिण्डिम:"। अर्थात जो आदि में न हो, अन्त में भी न हो, वह मध्य में शामिल होने पर भी असत् (मिथ्या) ही माना जायेगा। अत: यह जगत् मिथ्या है यह वेदान्त का डिण्डिम घोष है। गीता में भी भगवान् ने कहा है "नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सत:" (गीता 2/16)। यहाँ भाव शब्द उत्पत्ति का बोधक है (भाव: सत्ता स्वभावाऽभिप्रायचेष्टाऽऽत्मजन्मसु कोश:) और अभाव शब्द विनाश का धोतक है। जो पदार्थ शशश्रृंड्गदि के सामन आसत है उसकी उत्पत्ति नहीं होती, अभाव पद के संयोजन से उसका विनाश भी नहीं होता। इस प्रकार जो सत् पदार्थ है, उसकी भी उत्पत्ति एवं विनाश नहीं देखे गये - "यथा असतो भावो-ऽभावश्च न विद्यते, तथा सतोऽपि अभावों भावश्च न विधेते।[11] अत: जगत् यदि परमार्थ ब्रह्म के समान सर्वदा सत् हो एवं बन्ध्या पुत्र तो उसकी उत्पत्ति एवं विनाश नहीं हो सकता। परन्तु हमारे वेद उपनिषद्, स्मृति, पुराणादि शास्त्रों में जगत् की उत्पत्ति कही गयी है एवम् उसके विनाश (प्रत्यय) का भी वर्णन किया गया है। अत: जगत् सत् एवम् असत् नहीं किन्तु सत् एवम् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्या ही है। उसकी व्यावहारिक सत्ता है फिर भी वह ब्रह्म के समान परमार्थ सत्ता नहीं है।

नाम रूपात्मक जगत् की प्रसिद्धि प्रतीति में जिज्ञासा होती है कि जगत् की प्रसिद्धि स्वत: है या चेतन आत्मा से या प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। जगत् स्वयं जड़ है और जड़ से जड़ की प्रतीति नहीं होती अत: प्रथम पक्ष सर्वथा अयुक्त है। द्वितीय पक्ष भी संगत नहीं है क्योंकि चेतन आत्मा असंग है, उसका जगत् से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, बिना सम्बन्ध के कोई प्रकाशक किसी की प्रसिद्धि नहीं कर सकता। तीसरा पक्ष अर्थात, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी जगत् को प्रसिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि कोई भी प्रमाण जड़ पदार्थ विषयक संवित्, प्रकाशक का कारण-उत्पादक नहीं हो सकता। सर्वज्ञात्ममुनि लिखते हैं – जगत् की प्रसिद्धि न जगत् से न चेतन ब्रह्म और न प्रत्यक्षादि प्रमाणों से होती है अत: इस जगत् की अनिर्वचतीय मायामयता रूप से ही प्रसिद्धि है। इसलिए अनिर्वचनीय, मिथ्या, देह, गेह,कलत्र, पुत्रादि जगत् को कितना भी परमार्थ रूप से सत्य मानें तो भी वह सत्य नहीं हो सकता। अत: नाम रूपात्मक जगत को तत्वदर्शियों ने स्वप्न के समान केवल प्रतीति माना है[12], अन्तर मात्र इतना ही है कि स्वप्न का काल बहुत कम होता है और जगत् का स्वप्न काल लम्बा होता है। अज्ञानियों के लिए तो वह सदा बना रहेगा। यह प्रतीयमान संसार स्वप्न के समान रागद्वेषादि दोषों से सम्बद्ध है। जैसे स्वप्न

[9] अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यशपण्चकम्। आदित्रयं ब्रहमरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।। दृग्दृश्यविवेक 20

[10] गौडपादाचार्य: माण्डूक्योपनिषद् कारिका

[11] **ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य सत्यानन्दी-दीपिका पृ. 15-16**

[12] **संसार: स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुल:। स्वप्नकाले सत्यवभवति प्रबोधेऽसत्यवदभ्वेत्।।**

स्वप्नकाल में शामिल होता है और जाग्रत् काल में बाधित हो जाता है, वैसे ही यह संसार भी अज्ञान काल में प्रतीत होता है और ब्रह्म ज्ञान होने पर बाधित हो जाता है।[13] 'दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किम् भवतिरस्कार: - हे भगवन् अधिष्ठानरूप सर्वात्मा आप परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर क्या द्वैत प्रपञ्च का तिरस्कार नहीं हो जाता? अवश्य ही हो जाता है। अधिष्ठान के साक्षात्कार से उसमें आरोपित के ज्ञान का बाध हो ही जाता है (रज्जु के ज्ञान से उसमें आरोपित सर्वज्ञान खण्डित हो जाता है), यह सर्व विदित न्याय है।

अब प्रश्न यह है कि ब्रह्मज्ञान के बाद क्या बाधित जगत् की सत्ता भौतिक रूप से समाप्त हो जाती है? इसका उत्तर है जगत् की भौतिक सत्ता वैसे ही बनी रहती है। उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है। ब्रह्मज्ञान के पूर्व जगत् असत्य भी नहीं कहा जा सकता। दो सत्य एक साथ नहीं रह सकते। जब तक ब्रह्मज्ञान न हो तब तक जगत् की सत्ता को हम मिथ्या भी नहीं कह सकते।

1.3.2 पारमार्थिक सत्ता – एक अद्वितीय ब्रह्म

पारमार्थिक् सत्ता वह है जिसका कभी खण्डन न हो, बाध न हो। अद्वैत पद्धति में ब्रह्म ही एक मात्र ऐसी सत्ता है जो त्रिकाला बाधित है उसे आत्मा भी कहा गया है।[14] ऐसा नहीं है कि वह कभी नहीं था (जगत् की भान्ति), ऐसा भी नहीं है कि वह कभी नहीं रहेगा (बाधित सत्ता की तरह)। उसकी सत्ता त्रैकालिक है अधिक उचित तो, यह होगा कि वह काल से भी परे है। वह स्वयं प्रकाश है उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित है।[15] उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सारे प्रमाण उसी से कार्य करते हैं। प्रमाणों का प्रमाणत्व भी उसी से है। फिर भी श्रुतियाँ एवं स्मृतियाँ एक स्वर से अन्तिम सत्ता के रूप में ब्रह्म/आत्मा का प्रतिपादन करती हैं। वे ब्रह्म को एक अद्वितीय सत्ता घोषित करती हैं। वही सृष्टि के पूर्व (अग्रे) विद्यमान था, वही सृष्टि में व्याप्त है, वह सृष्टि से परे भी है। प्रलय के बाद भी रहेगा। 'सर्वं खाल्विदं ब्रह्म[16] (छा; 3/14/1), 'एकमेवाद्वितीयं' ब्रह्म[17] (छा. 6/2/2) 'ब्रह्मवाइदं विश्वम्[18] (मु. 2/2/11) 'स भूमिं विश्वती वृल्वाडत्यतिष्ठदृश्याभुलम्[19] (ऋग्वेद 10/90), 'पर एकमाहु:[20]' (ऋ 10/82/2)' यो देवानां नामधा एक एव[21]' (ऋ. 10/82/3) 'एको हंसो: भुवनस्यास्य मध्ये[22]' (हंस: परमात्मा) (श्वेताश्रवतर 6/6/15) 'सदेव सोम्येदमग्र: आसीत् एकमेवाद्वितीय[23]।

---

[13] तस्मात्प्राग्ब्रह्मात्मताप्रति बोधादुपपन्न: सर्वो लौकिको वैदिक श्च व्यवहार: ..... प्रतिपादित अन्मैकत्वे समस्तस्य प्राचीनस्यव्यवहारस्य बाधितत्वान्नानेकात्मकब्रह्मकल्पनावकाशेडस्ति। .....
परामार्थावस्थायां सर्व-व्यवहाराभावं वदन्ति वेदान्ता:सर्वे। ब्रह्मसूत्र 2/1/14 शंकर भाष्य

[14] अयम् आत्मा ब्रह्म (वृह 2/5/19)

[15] तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिंद मिभाति। मु. 2/2/१5

[16] सब कुछ ब्रह्म है

[17] ब्रह्म एक एवं अद्वितीय है।

[18] ब्रह्म ही यह विश्व है।

[19] वह भूमि को सब ओर व्याप्त कर उसके परे भी दस कांगुल विद्यमान है।

[20] एक और परम कहा गया है।

[21] सभी देवों का नाम धारण करने वाला एक ही ब्रह्म है।

[22] एक ही हंस (परमात्मा) संसार में है।

[23] हे सौम्य सृष्टि के पूर्व एक और अद्वितीय सत् (ब्रह्म) था।

'आत्मा का इदम् गे एक एवाग्र आसीत्'[24] आदि अनेक श्रुतियों में तथा त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्[25] (गीता 11/37) सर्वमावृत्यतिष्ठति[26] (13/13) मन्त्र: परतरं नान्यत्किचिदस्ति धनञ्जय[27] (गीता 7/7) अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव:- प्रथम प्रलयस्तथा[28] (गीता 7/6) विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्[29] (10/42) और अनेक गीता के श्लोकों में एक स्वर से एक परम सत्ता की स्वीकृति प्राप्त होती है।

श्रुति के एक भाग ब्रह्म की परमार्थता का प्रतिपादन करती हैं और कहती हैं कि जो ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है,[30] जो एकमात्र ब्रह्म को परमार्थ जानता है वह शोक को पार कर जाता है।[31] इसीलिए ब्रह्मज्ञानी जनक को अभय बताया गया।[32]

ब्रह्म की ही एक मात्र परमार्थता बताने के साथ ही श्रुतियों भेद और नानात्व का निषेध भी करती हैं कि नानात्व नहीं हैं।[33] उससे भिन्न कुछ नहीं है। यह भी कहती हैं कि जो नानात्व को देखता है वह मृत्यु को प्राप्त होता है।[34]

इस प्रकार हम यह कहते है कि श्रुतियों एवं स्मृतियों की एक स्वर से स्थापना कि ब्रह्म की ही एक मात्र परमार्थ अर्थ सत्ता है और भेद तथा नानात्व नहीं है।

श्रुतियों के एकत्व प्रतिपादन को श्रुति-सम्मत तर्क के आधार पर भी अद्वैतसिद्धान्त में विचार किया गया है। इसमें बाह्य जगत् एवम् आन्तरिक जगत् का विश्लेषण कर, क्रमश: तत् पदार्थशोधन एवं त्वं पदार्थ शोधन व्यवहार एक अद्वितीय सत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

1) **तत् पदार्थ शोधन** बाहसमस्त – पदार्थों का यदि तार्किक विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उनके मूल में एक निर्विशेष सत्ता है प्रकार केवल नाम के लिए हैं।-आकार –मृत्तिका जैसे घड़ा – एवं मृत्तिका से बने जितने भी पदार्थ हैं (मिट्टी), कटोरा, दीया, भरूका, कलाकृतियों आदि उन सबके मूल में मिट्टी ही है। पहले भी मिट्टी थी, उसके बने रहने पर भी मिट्टी है तथा उसके नष्ट होने पर भी मिट्टी रहेगी। विकार केवल नाम है, मृत्तिका ही सत्य है मृं। सुवर्ण एवं सुवर्ण से निर्मित ण में विकारों नाम धेयम् मृतिकेव सत्यवाचारम्भ – अंगूठी, कुण्डल, हार आदि आभूषण मूलतसुवर्ण ही है :, लकड़ी से बने कुर्सी, मेज, तख्त आदि मूलत: लकड़ी ही है। अग्नि से विनती किशोरियां मूलतअग्नि ही है। मृत्तिका :, स्वर्ण एवं लकड़ी के मूल को अन्वेषण करें तो पाएगें कि वह सत्ता है, अस्तित्व है जिसका कोई आकार प्रकार नहीं है। मृत्तिका है, स्वर्ण है, लकड़ी है, इन सभी वाक्यों में सत्तात्व अनुस्यूत है, 'है' लगा हुआ है। बाह्य संस्था के किसी भी पदार्थ का विश्लेषण करें तो हमें

---

[24] आत्मा ही पहले था।

[25] ईश्वर अक्षर स्वरूप है, सत् भी हैं, और उससे परे भी हैं।

[26] सब कुछ व्याप्त करके स्थित है।

[27] हे अर्जुन मेरे सिवाय जन्मा कोई किंचित मात्र भी नहीं है।

[28] में सम्पूर्ण जगत् का प्रभव तथा प्रलय हूं।

[29] मैं अपने एक अंश से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर स्थित हूं।

[30] ब्रह्म ब्रह्मैव भवति (मु. 3/2/9) अहं बह्मास्मि (बृ. 1/4/10)

[31] भूतान्यात्मैवावेद तन्त्र को मोह: क: शोक एकत्वमनुपश्यत:। ईश. 7

[32] अभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति। वृ. 4/2/4

[33] भूद्विजानन:, (ब्रहम, 4/4/19) न तु तद्द्वितीयमास्ते (बृ. 4/3/23)

[34]

सत्ता ही प्राप्त होगी जो सभी परिवर्तनों निर्विचार हैके बाद भी नित्य (निर्वत), सब में अनुस्यूत है। विचार अनृत है।[35]

श्रुतियाँ स्वर्ण, मृत्तिका, लौह, विस्फुलित का उदाहरण देती हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि – सृष्टि वास्तविक हो गयी। ये दृष्टान्त मात्र अद्वैत को समझाने के लिए साधन हैं, उपाय हैं। वास्तव में किसी प्रकार का भेद नहीं है क्योंकि परिवर्तन परिणाम नहीं, निवर्त है। परिवर्तन अवास्तविक है, नाम मात्र है। गौड़पाद ने कहा है – 'उपाय: सोऽवताराय नास्ति भेद: कथंचन, अद्वैत ब्रह्म अविद्या या भाषा शान्ति के कारण अनेमवत् प्रतीत होता है। वह परमतत्त्व अपनी भाषा से विविध रूपों को प्राप्त होता है वस्तुत: कोई भेद नहीं इन्द्री: मायामि: पुरुरूप ईयते (ऋग्वेद 6/47/18), अजाय मानो बहुधा विजायते (यजुर्वेद 37/79)। तत् पदार्थ शोधन को अग्रलिखित रूप में व्यक्त कर सकते हैं –

1) संसार के सभी परिच्छिन्न और परिवर्तनशील विषयों का मूल अधिष्ठान और उपादान शुद्ध निर्विशेष सत्ता है।
2) विषयों के परस्पर बाधित होने से वे पूर्णत: सत्य नहीं माने जा सकते।
3) केवल शुद्ध सत्ता ही अनुभूत या सम्भाव्य विरोध से रहित होने के कारण एक मात्र निरपेक्ष सत्य है।
4) शुद्ध सत्ता शुद्ध, अपरिच्छिन्न या अनन्त रूप है।

2) त्वं पदार्थ शोधन – आन्तरिक जगत् का विश्लेषण एक निर्विशेष आत्मचैतन्य का संकेत करता है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय: ये चार अवस्थाएँ चेतना जगत् की हैं। सारे जागतिक अनुभव में आत्मचेतना विद्यमान रहती है। जाग्रत् अवस्था में चेतना को सदैव विषय सापेक्ष ही पाते हैं, उसी का आकार ग्रहण कर लेती है, जैसे जल किसी पात्र में डालने पर उसी का आकार ग्रहण कर लेता है। समस्त जाग्रत् अनुभव निर्विशेष, निराकार चेतना के द्वारा ही प्रकाशित होता है। स्वप्नावस्था में चेतना का संसार सिमट जाता है, मात्र चेतना और स्वप्न का संसार रह जाता है। स्वप्न एवं जाग्रत् में अन्तर यह है कि जाग्रत में ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया और स्थूल शरीर का सम्बन्ध रहता है किन्तु स्वप्न में इन्द्रियों की क्रिया एवं स्थूल शरीर का सम्बन्ध नहीं रहता फिर भी महसूस होता है कि इन्द्रियाँ काम कर रही हैं और स्थूल शरीर भी जुड़ा है। स्वप्न में ऐसा भी अनुभव होता है कि वस्तुएँ विद्यमान हैं पर वे होती नहीं। फिर भी चेतना होता है। सुषुप्तावस्था में चेतना निर्विषक होता है, उसका किसी विषय से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। यह चेतना की स्वाभाविक अवस्था है। इस अवस्था में जीव नहीं होता अपितु अपनी अविद्या से युक्त साक्षी होता है। किन्तु अविद्या मात्र आंशिक रूप में सक्रिय होती है, वह सत्य के स्वरूप को आच्छादित तो किये रहती है, पर स्वप्न और जाग्रत् अवस्था की तरह नाना रूपों में विकास नहीं करती। सुषुप्ति में आनन्द का अनुभव होता है जो आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप है। जागने पर व्यक्ति कहता है अच्छी नींद आयी अपना भी ज्ञान नहीं रहा, बहुत आनन्द आया। वास्तव में सुषुप्ति में आत्मा का वास्तविक स्वरूप (निर्विषय) कुछ काल के लिए प्रकट होता है, यह समाधि की अवस्था है पर तामसिक होने से अभीष्ट नहीं। त्रुरीय अवस्था में चेनता का सर्वथा निर्विशेष रूप प्रकाशित होता है, सभी विषय छूट जाते

[35] सर्वञ्च नामरूपादि सदात्मनैव सत्यं विकारजातम् स्वतस्त्वनृतमेव। शंकरभाष्य छा. 6/3/2

हैं, केवल चेतना का अखण्ड प्रवाह रहता है। यही चेतना का वास्तविक स्वरूप है।

वस्तुत: जगत के मूल से सत्ता और अन्तर्जगत के मूल में चेतना है, जो अखण्ड दीवार है। किन्तु ऐसे नहीं है कि ये दो तत्त्व हैं, सत्ता एवं बोध (चेतना) में कोई अन्तर नहीं है। सत्ता ही बोध है और बोध ही सत्ता है – 'सत्ता एव बोध: बोध एव सत्ता'। सत्ता स्वयं प्रकाश है, बिना बोध के वह स्वयं प्रकाश नहीं हो सकती और चेतना भी वस्तुत सत्ता है, यहाँ भी सत्ता अनुभव है।

इस प्रकार अद्वैत पद्धति में एक निर्विशेष तिराकर और निर्विकार सत्ता का महत्त्व सिद्ध होता है। बाकी सब कुछ वाणी के छना व्यवहरत नाम हैं, विवर्त हैं।

1.4 ब्रह्म

अद्वैत सिद्धान्त में ब्रह्म ही पूर्ण एवम् एक मात्र सत्ता है। आत्मा भी उसी का नाम है। केन उपनिषद् भाष्य में शंकराचार्य लिखते हैं – उस आत्म स्वरूप को ही तू बृहत् होने के कारण ब्रह्म यानि भूमासंज्ञक सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म जान।[36] ब्रह्म मन एवं वाणी का विषय नहीं है[37] बल्कि मन और वाणी उसी से क्रियाशील हुआ कहा जाता है।[38] ब्रह्म साक्षात्कार ही जीवन का चरम लक्ष्य है। वह सर्वोच्च ज्ञान है, ब्रह्म ज्ञान से संसार का ज्ञान, नानात्व का ज्ञान जो मूलत: अज्ञान है, समाप्त हो जाता है। ब्रह्म अन्नत, सर्वव्यापी तथा सर्व शक्तिमान है। वह विविध भेदों से रहित, विविध विरोधों से परे, व्यक्तित्व शून्य, अपरिवर्तनशील एवम् अनिर्वचनीय सत्ता है।

ब्रह्म भेद रहित - ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद रहित है। एक ही प्रकार की वस्तुओं में जो भेद होता है उसे सजातीय भेद कहा जाता है जैसे एक गाय का दूसरी गाय से भेद। दो असमान वस्तुओं का भेद विजातीय भेद है जैसे गाय और घोड़ें में। एक ही वस्तु और उसके अंशों में जो भेद होता है वह स्वगत भेद है जैसे गाय के सींग एवं पुच्छ में। ब्रह्म के एक, अद्वितीय होने से उनमें सजातीय या विजातीय भेद का प्रश्न ही नहीं पैदा होता। चूंकि ब्रह्म निरवयव एवं निराकार है इसलिए इसमें स्वगत भेद भी नहीं है। रामानुजाचार्य चित् उचित अचित् को ब्रह्म का फर्श मानकर स्वगत भेद स्वीकार करते हैं।

ब्रह्म विरोध मुक्त – विरोध दो प्रकार का होता है प्रत्यक्ष विरोध और सम्भावित विरोध। एक प्रतीति का दूसरी वास्तविक प्रतीति से खण्डित हो जाना प्रत्यक्ष विरोध है जैसे रस्सी (आधेपठान) के ज्ञान से पूर्व उसमें अनुभूत सर्पज्ञान का खण्डित हो जाना। सम्भावित विरोध उसे कहते हैं जो युक्ति के द्वारा बाधित होते है। परिवर्तन असत्य है क्योंकि इसका खण्डन युक्ति से होता है। अद्वैत तन्त्र में परिवर्तन अतास्त्विक होता है जिसे विवर्त कहा जाता है। मूल सत्ता या ब्रह्म परिवर्तन से परे है। चूंकि ब्रह्म त्रिकालाबाधित है अत: उसमें न तो प्रत्यक्ष विरोध है न सम्भावित।

व्यक्तित्व शून्य – आचार्य शंकर ब्रह्म को निर्वैयक्तिक मानते है। व्यक्तित्व में आत्मा और अनात्मा का भेद रहता है। ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत सभी भेदों से रहित है इसलिए वह व्यक्तित्वरिक्त निर्वैयक्तित्व सत्ता है। शंकराचार्य की तरह पाश्चात्य विचारक ब्रैद्व के भी

[36] तदेव आत्मस्वरूपं ब्रह्म निरतिशयं भूमाख्यं बृहत्वाद् ब्रह्मेति विद्धि। केनीपनिषद्भाष्य 1/4

[37] यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राच्य मनसा सह। तैत्ति उ. 2/4/1

[38] केन उपनिषद् ¼-5 एवम् उस पर शंकर भाष्य

परम सत्ता को व्यक्तित्व रिक्त मानते हैं। रामानुजाचार्य ब्रह्म को व्यक्तित्व पूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार ब्रह्म में स्वगत भेद है। ब्रह्म चिदचिद् विशिष्ट व्यक्तित्वपूर्ण अद्वैत सत्ता है।

ब्रह्म का लक्षण – आचार्य शंकर ने ब्रह्म के वास्तव स्वरूप का निर्णय करने के लिए दो प्रकार के लक्षणों को स्वीकार किया है – स्वरूप लक्षण, तटस्थ लक्षण। स्वरूप लक्षण पदार्थ के तात्त्विक रूप का परिचय देता है, परन्तु तटस्थ लक्षण कुछ देर तक रहने वाले प्रतीयमान आगन्तुक गुणों का निदेर्श करता है।[39] उदाहरणार्थ एक नर किसी नाटक में राजा की भूमिका अदा करता है तो नाटक के क्रिया व्यापार तक मंच पर वह राजा है किन्तु वास्तव में वह नर ही है। उसको राजा मानना तटस्थ लक्षण हुआ और नर बतलाना स्वरूप लक्षण हुआ।

ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है[40] विज्ञानमानन्द ब्रह्म[41] वृह. 3/1/28, विज्ञानघन एव[42] (वृह. 2/4/12), सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म[43] (तैत्ति 2/1/1) प्रज्ञान ब्रह्म[44] (ऐतर 3/1/3)।[45] सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म में सभी लक्षणपरक श्रुतिवाक्यों का समाहार हो जाता है। यह ब्रह्म का लक्षण है[46], विशेषण नहीं। लक्षण और विशेषण में अन्तर होता है। विशेषण अपने विशेष्य का उसके सजातीय पदार्थों से व्यावर्तन करने वाले होते हैं, किन्तु लक्षण उसे सभी से व्याग्रत (अलग) कर देता है।[47] 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' में एक दूसरे की अपेक्षा न रखकर सत्यं ब्रह्म' 'ज्ञानं ब्रह्म' 'अनन्तं ब्रह्म' तीनों पद ब्रह्म शब्द से सम्बन्धित है।[48]

सत्य का अर्थ है अपने निश्चित स्वरूप से कथमपि कियदपि व्यभिचरित न होना।[49] व्यभिचरित होने पर उसे मिथ्या कहा जाता है।[50] इसलिए विकार मिथ्या है। 'विकार केवल वाणी से होने वाला और नाममात्र है, बस श्रुति का ही सत्य है। इस प्रकार श्रुति से निश्चय किये जाने के कारण सत् ही सत्य है। अत: 'सत्य' ब्रह्म यह वाक्य ब्रह्म को विकार मात्र से निवृत्त करता है।

मृत्तिका (उपादान कारण) के समान कहने से ब्रह्म में जड़ रूपता का प्रसंग न उपस्थित हो, शंका न हो, इसीलिए 'ज्ञान ब्रह्म' कहा गया। ज्ञान ज्ञप्ति यानि अवबोध को कहते हैं। ज्ञान शब्द भाव वाचक है।[51]

जो वस्तु कहीं से विभक्त न हो वह अनन्त है।[52] जहाँ किसी दूसरे को नहीं जानता वह भूमा है (यत्र नान्य-द्विजानाति स भूमा छा. 7/24/1)। ब्रह्म भूमा है, वह अनन्त है।

---

[39] स्वरूप सद्व्यखर्तक स्वरूप लक्षणम्। कदाचि त्कत्वे सति व्यावर्तक तटस्थ लक्षण्य्

[40] शंकर भाष्य केन उप. द्वितीय खण्ड ।

[41] ब्रह्म विज्ञान एवं आनन्द स्वरूप है।

[42] वह विज्ञानघन ही है।

[43] ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त स्वरूप है।

[44] प्रज्ञान ब्रह्म है।

[45] इति च ब्रह्मणों रूपं निर्दिष्टं श्रुतिषु। शंकर भाष्य केन 2/1

[46] लक्षणार्थ वाक्यम्। शंकर भाष्य तेत्ति 2/1

[47] समान जाती एव निवर्तकानि विशेषणानि विशेष्यस्य। लक्षणं तु सर्वत एव। शांकरभाष्य तैत्तिरीय उप. 2/1

[48] परस्परं निरपेक्षा ब्रह्मशब्देन सम्बध्यते सत्यं ब्रह्म ज्ञानं ब्रह्मनन्तं ब्रह्मेति। शांकरभाष्य तैत्ति 2/1

[49] यद्रूपेण यन्निश्चितं तद्रूपं न व्यभिचरित तत्सत्यम्। वही 2/1

[50] व्यभिचरदनृतम्। वही

[51] ज्ञानं ज्ञप्तिरवबोध:भावसाधनो ज्ञानशब्द:। वही

[52] न कुर्ताश्चितत्रविभज्यते तदनन्तम्।। वही

ब्रह्म का एक अन्य लक्षण उसका आनन्दमय होना है। उसी आनन्द को प्राप्त कर हम आनन्दित होते हैं।[53]

तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में अनेक मन्त्रों में ब्रह्म के लिए आनन्द शब्द प्रयोग हुआ है 'रसो वैस: (2/7) यदेष आकाश आनन्दी न स्यात। एष हयेवानन्दयाति (2/7) 'सैष आनन्दस्य मीमांसा भवति', आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन (2/8,9) आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् (3/16) बृहदारण्यकोपनिषद् में भी विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (3/9/28) कहा गया है। शंकराचार्य इन श्रुत्तियों को आधार बनाकर ब्रह्म को आनन्दमय कहते हैं। यहाँ आनन्दमय में मयट् प्रत्यय विकारार्थ न होकर प्राचुर्यार्थ है।[54]

ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का कारण है[55], आगन्तुक गुणों के समावेश होने से यह उसका तटस्थ लक्षण है। इस रूप में वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर है। ब्रह्म ही इस कथित जगत् का निमिन्त एवम् उपादान कारण है। इसे समझाने के लिए श्रुति में मकड़ी के जाले का उदाहरण दिया गया।[56] मकड़ी जाल को बनाने की सामग्री स्वयं से उत्पन्न करती है और निर्माण भी करती है। वैसे ही ईश्वर इस जगत की सामग्री भी स्वयं है। अपने से ही बनाता है और निर्माणकर्ता भी स्वयं है। ब्रह्म जगत् की रचना कर उसी में व्याप्त हो गया[57] किन्तु उसकी सत्ता यहॉ समाप्त नहीं हुई, वह विश्व के बाहर भी है – विश्वातीत भी है। श्रुति स्पष्ट कहती है वह एक पाद से संसार में व्याप्त है उसका तीन पद द्युलोक में है।[58] यह ब्रह्म का सगुण रूप है। वह सर्वगुण सम्पन्न सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवम् अनन्त गुणाकर एवं दयालु है, उपास्य है। व्यवहारिक जगत् और सगुण ब्रह्म दोनों की स्थिति मायिक है। माया के कारण ही ब्रह्म जगत् रूप में भासता है और ईश्वर इसका सचालक होता है। वास्तव में निर्दिष्ट निराकार ब्रह्म ही परमार्थ है, माया निवृत्ति के साथ ही सगुण ब्रह्म एवं जीव जगत् की सत्ता अन्यथा हो जाती है।

पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म निर्विशेष एवं निराकार है। उसमें जीव एवं जगत् का कोई गुण आरोपित नहीं किया जा सकता। वह सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद रिक्त है। उसका सर्वोत्तम निर्वचन नेति-नेति है। उपनिषद् उसे नेति नेति कह कर पुकारते हैं।[59] प्रत्येक विधेय उद्देश्य को सीमित करता है। यदि कहें कि कलम लाल है तो वह हरा, पीला, नीला इत्यादि नहीं हो सकता। ब्रह्म असीमित है इसलिए किसी विशेषण से उसे सीमित नहीं किया जा सकता। शब्दों के माध्यम से उसका निर्वचन नहीं किया जा सकता। वह अनिर्वचनीय है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है, कि वह शून्य है। शंकराचार्य ने स्वयं कहा कि ब्रह्म सच्चे अर्थों में निरूपाधिक है, और

---

[53] रसं हयेवायं लबध्वानन्दी भवति उ. 2/7

[54] शंकर भाष्य ब्रह्मसूत्र 1/1/12 एवं तैत्तिरीयोपनिषद् 2/7

[55] यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यमिसंविशान्ति तद्विजिज्ञास्व तद् ब्रहमेति। तै. उ. 3/1 ब्र. सूत्र 1/1/2

[56] यथोर्णनाभि: सृजते गृहतेच ..... तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्रम्।। मु. उ. 1/1/7।

[57] तत्सृष्टत्वा तदेवानुप्राविशत्। तैत्ति. उ. 2/6

[58] पादोडस्य विश्रवा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।। ऋग्वेद 10/90/03

[59] 'अथात आदेशो नेति नेति'। पञ्चदशी में एक उदाहरण दिया गया है कि घर आदि में रखे आकारवान पदार्थों को घर से निकाल देने पर निकालने के अयोग्य अमूर्त (निराकार) आकाश ही शेष रह जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म से भिन्न बाध योग्य मूर्ति-मूर्त आदि सभी का 'नेति नेति' (यह भी ब्रह्म नहीं, यह भी ब्रह्म नहीं) इत्यादि श्रुति वाक्यों द्वारा निराकरण कर दिये जाने पर अन्त में सब अनात्म पदार्थों के बाघ का साक्षी ज्ञान मात्र शेष रह जाता है, वही बाधा साहित्य शब्द से उपलक्षित आत्मा ब्रह्म है – अपनी तेषु मूर्तेषु ह्यमूर्त शिष्यते वियत्। शस्येषु बाधितेष्वन्ते, शिष्यते यत्तदेव तत्।।

इसलिए मन्द बुद्धि को शायद वह शून्य दिखाई दे।[60] ब्रह्म स्वानुभूत्येक गम्य है (स्वानुभूति से जाना जाता है)। आत्मा रूप में सबको ब्रह्म का अनुभव होता है। गूरु शिष्य को उपदेश भी देता है – तत्त्वमसि श्रवेतकेतो (छा. 6/8)।

ब्रह्म एवं जीव

परमार्थत: जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है – जीवोब्रह्मैवनापर: वस्तुत: जीव, ईश्वर एवं ब्रह्म एक ही है। अद्वैत में भेद कौन? अनादि अविद्या के गाढ़ निद्रा में चिरकाल से सोया जीव तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के ज्ञान से जगता है तो उसे देह, इन्द्रिय, बुद्धि के उपाधि से परे अद्वैत आत्मतत्व का साक्षात्कार हो जाता है। अविद्या के साथ तज्जन्य कर्म जाल भी नष्ट हो जाता है। जीवत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि की मिथ्या कल्पनायें भी विलीन हो जाती हैं। जीव ब्रह्म हो जाता है यह कथन भी उपचार मात्र है क्योंकि जीव सदा ही ब्रह्म है। जीवत्व तो अविद्या जनित भ्रान्ति है – रज्जु-सर्प, शुक्ति-रजत के समान। बन्धन और मोक्ष दोनों व्यवहारिक हैं, पारमार्थक नहीं। एक ही कूटस्थ, नित्य, विशुद्ध विज्ञान स्वरूप आत्म तत्त्व है जो अविद्या के अनेक रूपों में प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व नहीं है।[61] जो लोग श्रुति में जीव और ब्रह्म का वास्तविक भेद प्रतिपादित करते हैं वे पण्डितों में निकृष्टतम (पण्डितापसद) हैं।[62] नृसिंह सरस्वती कहते हैं, सत्ता रूप से जीव एवं ब्रह्म का भेद नहीं हो सकता क्योकि सत्ता पूर्ण एक, अखण्डित एवं व्यापक पदार्थ है।[63] जीवात्मा वस्तुत: देह नहीं देव है, जड़ नहीं चेतन है, दृश्य नहीं द्रष्टा है, परिच्छिन्न नहीं अपरिच्छित है। अत: इसकी भी ब्रह्म के समान त्रिकालाबाधित पारमार्थिक् सत्ता है। यह स्वयं प्रकाश, चित्: सिद्ध स्वरूप है।[64]

ब्रह्म एवं जीव के सम्बन्ध में अद्वैती प्रतिबिम्बवाद, अवच्छेदवाद और आभासवाद की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। ब्रह्म का अविद्या में प्रतिबिम्ब ही जीव है जैसे चन्द्रमा का जल में प्रतिबिम्ब-एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत्। जल के स्वच्छ, अस्वच्छ के तारतम्य से प्रतिविम्बम में मलिनता आदि आ जाती है। एक प्रतिविम्ब के कम्पित होने का प्रभाव अक प्रतिबिम्ना पर नहीं पड़ता वैसे ही एक जीव का कर्म फल के साथ सम्बन्ध होने पर दूसरे जीव का सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु प्रतिबिम्ब वाद में समस्या है कि निराकार ब्रह्म का माया के कारण अविद्या में प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है। प्रतिबिम्ब तो साकार का पड़ता है। इस कठिनाई से बचने के लिए अवच्छेदवाद का सिद्धान्त दिया गया। माया के द्वारा अविद्या अथवा अन्त:करणावच्छिन जीव है। आत्मा दिक् के समान एक है, दिक् अखण्ड है किन्तु अपनी सुविधानुसार उसमें कृत्रिम रूप से खण्डों की कल्पना कर लेते हैं। इसी प्रकार एक ही आत्मा अनेक आत्मा के रूप में दीख पड़ती है। किन्तु माया या अविद्या ब्रह्म को परिच्छिन्न कैसे कर सकती है। फिर आभासवाद से इस सम्बन्ध को समझ गया। इसके अनुसार ब्रह्म का अविद्या अन्त:करण में आभास जीव है। माया के सदसदनिर्वचनीय होने से आभास भी सदसदनिर्वचनीय है। मिथ्या है। शंकराचार्य आभासवाद को स्वीकार करते हैं यद्यपि उन्होंने प्रतिबिम्ब एवम् अवच्छेद की उपमायें एवं दृष्टान्त भी दिये हैं किन्तु उपमा के रूप में। इन्हें वाद

[60] शंकर भाष्य छा. 8/1/1

[61] ब्रह्मसूत्र शंकर-भाष्य 1/3/19

[62] य: च एवं बुध्यते य: च: बोधयति न असौ क्षेत्रन इति। एवं मन्वानो य: स पण्डितापसद:। शंकर-भाष्यगीता 13/2

[63] न जीवब्रहमणोंर्भेद: सत्ता रूपेण विद्यते। सत्ता भेदे न मान स्यादिति वेदान्त-डिण्डिम:।।

[64] ब्रह्मसूत्र शाकड़रभाष्यम् सत्यानन्दीदीपिका पृ. 17

के रूप में कभी ग्रहण नहीं किया। उनके अनुसार प्रतिबिम्ब और अवच्छेद भी आभास के अन्तर्गत ही आता है। आचार्य का मानना है कि माया का अविधा ब्रह्म को वस्तुत: न प्रतिबिम्बित कर सकता है, न सीमित कर सकता है। माया मात्रि है अत: उसके आभास भी मिथ्या हैं। आभास ब्रह्म के विवर्त हैं, परिणाम नहीं।

1.5 अध्यास

ब्रह्म ही एकमात्र परमार्थ सत्ता है तो जीव एवं जगत् की सत्ता अनुभव में कैसी आती है? इसका उत्तर शंकराचार्य अध्यास के द्वारा देते हैं। एक वस्तु का अपना स्वरूप छिपाकर किसी दूसरे रूप में प्रतीत होना अर्थात् सत् पदार्थ में तद् भिन्न असत् पदार्थ के स्वरूप का आरोपण ही अध्यास है।[65] उदाहरणार्थ रज्जु में सर्प एवं शुक्ति में रजत अध्यान्त कह जायेगा। इसी प्रकार ब्रह्म में जगत् अध्यास हो जाता है।

ब्रह्म सूत्र भाष्य के पूर्व शंकराचार्य अध्यास का विवेचन करते है। जीव और जगत् विषयी और विषय, प्रकाश और अन्धकार के समान विरोधी धर्म वाले हैं। अनात्मा जड़ और आत्मा चैतन्य रूप होने से विरोधी है। अनात्मा (आत्मा भिन्न सारा जगत्)। जड़ और प्रकाश्य होने से विषय है, आत्मा विषयी है। चेतनत्व, नित्यत्व आदि आत्मा के धर्म हैं, जड़त्व, फरेच्छिनत्व आदि अनात्मा के धर्म हैं। इस प्रकार दोनों धर्मि और उनके धर्म एक दूसरे से भिन्न एवं विरुद्ध हैं। परन्तु दोनों के भेद का ज्ञान न होने से दोनों विरुद्ध धर्मियों का एक दूसरे में अध्यास होता है। आत्मारूपी धर्मि में यह में हूँ ऐसी अनात्मा बुद्धि तथा देह, इन्द्रियादि अनात्मा में यह आत्मा है ऐसी आत्मा बुद्धि होती है। इसी अध्यास के आधार पर समान लौकिक एवं वैदिक प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार प्रवृत्त हुए हैं। विधि, निषेध, बोधक एवं मोक्ष परक शास्त्र भी इसीलिए प्रवृत्त हुए हैं।

1.6 माया

निर्विशेष एक मात्र परमार्थ सत्ता ब्रह्म में सविशेष जगत् का अध्यास क्योंकर हुआ। इसका उत्तर अद्वैत वेदान्त माया के द्वारा देता है। माया ही अधिष्ठान ब्रह्म को आच्छादित कर उसमें जगत् को अध्यस्त करती है अर्थात् जगत् को दिखाती है। मायामुक्त होने पर ब्रह्म में जगत् की प्रवृत्ति नहीं होती है। मायोपहित ब्रह्म मे है। जगत् आभास मात्र है। यह माया ब्रह्म की शक्ति है जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति। यह अनादि त्रिगुणात्मिका एवं भाव रूप पदार्थ हैं। यह अभाव रूप नहीं है इसे बतलाने के लिए भाव रूप कहा गया है। यह ज्ञान विरोधी है। इसका पता इसके कार्यों से चलता है। यही इस जगत् को उत्पन्न करती है।[66] परमेश्वर की बीज शक्ति यह माया अव्यक्त कही जाती है। यह परमेश्वर में आश्रित रहने वाली महासुषुप्ति रूपिणी है जिसमें अपने सत्य रूप को न जानने वाले सांसारिक जीव शयन किया करते हैं।[67]

यह माया न सत् है, न असत्, न सदसद् उभयात्मक, न भिन्न है, अभिन्न, न भिन्नाभिन्न, न सांग

[65] अध्यासो नाम अतस्मिंस् तद् बुद्धि:। ब्रह्म-सूत्र शंकरभाष्य पृ. १७

[66] अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा। कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत सर्वमिदं प्रसूयते।। विवेकचूडामणि श्लोक 110

[67] अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्त शब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्ति: यस्यां रवरूप प्रतिबोधरहिता शेरते संसारिणों जीवा: ब्रहमसूत्र शांकरभाष्य 1/4/3

है, न अनंग, न उभयात्मक। सबसे विलक्षण अनिर्वचनीय है।[68] माया सत् नहीं क्योंकि ब्रह्मज्ञान से पूर्व इसका बोध होता है और यदि सत् होती तो इसकी प्रतीति सदा होती, कभी बाधित नहीं होती। माया असत् भी नहीं है क्योंकि उसकी प्रतीति होती है। ब्रह्म ज्ञान के पूर्व उसकी प्रतीति है। सारा जगत् ब्रह्म में माया द्वारा अध्यस्त है। ब्रह्म ज्ञान के पूर्व यह यथार्थ दिखाई पड़ता है। जगत् एक ऐसा स्वप्न है जिसे सब लोग देख रहे हैं। यह वैयक्तिक नहीं है किन्तु ब्रह्म ज्ञान होते ही माया और तज्जन्य अध्यास का बोध हो जाता है। इस प्रकार माया में बाध एवं प्रतीति दोनों लक्षण है। इसीलिए इसे सदसद् अनिर्वचनीय कहा जाता है।

माया की शक्तियाँ: आवरण एवं विक्षेप – माया की दो शक्तियाँ हैं – (1) आवरण और (2) विक्षेप। आवरण शक्ति से वह वस्तुभूप ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढकती है और विक्षेप शक्ति से अवस्तुरूप जगत् को उत्पन्न करती है। लोक व्यवहार में भी अधिष्ठान को ढक कर ही उस पर नवीन पदार्थ की स्थापना होती है। एक जादूगर कंकड़ उछालता है और वह सिक्कों के रूप में जमीन पर गिरता है। यहाँ जादूगर दो काम कर रहा है- अपने जादू की शक्ति से वह कंकड़ के रूप को ढक दे रहा है (आवरण) और उस कंकड़ में सिक्का दिखा रहा है (विक्षेप)। इसी प्रकार माया ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को ढक कर उसमें नानात्मक रूप जगत् को दिखाती है। उसमें आकाश, जल, अग्नि तथा पृथ्वी आदि के उत्पन्न होने की धारणा हमारे सामने लाती है। प्रपञ्च जगत् माया की दोनों शक्तियों के सामूहिक व्यवहार का प्रतिफल है। जैसे दुर्दिन में सूर्य के घने बादलों से ढक जाने पर वर्षा आंधी और तूफान से व्यक्ति पीड़ित होता है वैसे ही माया अधिष्ठान ब्रह्म को ढक कर अपने विक्षेप शक्ति से नाना प्रकार की रचना कर हमें दु:ख देती है।[69] यहाँ बादल, सूर्य को नहीं ढकता सूर्य वैसे ही प्रकाशित रहता है, सूर्य और हमारे बीच आवरण डालता है। वैसे ही ब्रह्म वास्तव में नहीं ढकता हमारी दृष्टि में ढकता है। जो लोग जादूगर के जादू को जानते हैं वे उसके जादू से प्रभावित नहीं होते। जो नहीं जानता प्रभावित होता है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी जो ब्रह्म के परमार्थ रूप को जानता है, उसके लिए माया निर्मित जगत् मिथ्या है। अज्ञानी के लिए सत्य है। इस पूरी प्रक्रिया में ब्रह्म में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह तो सदा एक दम निर्विकार बना रहता है।

ईश्वर एवं जीव दोनों ही माया जन्म हैं, मायिक हैं। इनकी यथार्थ सत्ता नहीं है। यथार्थ सत्ता तो एक मात्र अद्वैत ब्रह्म की है।[70]

1.7 सारांश

अद्वैत पद्धति वह पद्धति है जो द्वैत या भेद को मिथ्या मानती है और एक परमार्थ सत्ता ब्रह्म को स्वीकार करती है। इसका लक्ष्य एकतत्व का प्रतिपादन है। संहिताओं, उपनिषदों, गीता एवं ब्रह्म सूत्र में एकतत्व का ही प्रतिपादन है ऐसा अद्वैती स्वीकार करते हैं और उसके पीछे प्रमाण भी देते हैं। आर्ष ग्रन्थों के अतिरिक्त गौड़पाद कृत माण्डूक्य कारिका, जो माण्डूक्योपनिषद् पर एक तरह का मापक है, एकत्व का प्रतिपादन करती है। इसमें अजातिवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित

[68] सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो। साड़ाप्यनड़ाप्युभयात्मिका नो महाभुतानिर्वचनीयरूपा।। विवेकचूड़ामणि 11प्या1

[69] कवलितदिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेधैर्व्यथयति हिमझञ्झावायुसर्गेर्यथैतान्। अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं क्षपयति बहु दु:खे तीव्र विक्षेप शक्ति:।। विवेकचूड़ामणि 1/5

[70] मायाख्यया: कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ। यथेन्छं पिबतां द्वैतम् तत्वमद्वैतमेव हि।। पण्चदशी 6/236

है। शंकराचार्य इस परम्परा के महान आचार्य हैं, जिन्होंने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता) पर भाष्य लिखकर अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त सुरेखराचार्य, पद्मपादाचार्य, वाचस्पतिमिश्र, प्रकाशात्मयति, श्रीहर्ष, विद्यारण्य मुनि, मधुसूदन सरस्वती आदि आचार्यों ने अद्वैतवाद के एकत्व प्रतिपादन में अपना स्तुत्य योगदान किया है।

अद्वैत सिद्धान्त यह मानता है कि जो सत्ता त्रिकालाबाधित हो, कभी खण्डित न हो वही परमार्थ है। जिसका बाध है, वह वास्तविक नहीं है। रज्जु में सर्प की प्रतिति एक प्रतिमान है, प्रकाश होने पर सर्पज्ञान खण्डित हो जाता है। जगत की सत्ता व्यवहार की है, दीर्घ कम्रिक है, परब्रह्म ज्ञान से इसका बाध हो जाता है इसलिए वह परमार्थ नहीं है।

एक मात्र ब्रह्म ही ऐसी सत्ता है जो त्रिकालाबाधित है। इस सम्बन्ध में श्रुतियों में अनेकश: प्रमाण हैं। तार्किक रूप से बाहय जगत् का परीक्षण करने पर एक मात्र निवेश, वासना और आन्तरिक जगत् का परीक्षण करने पर निर्विशेष चैतन्य की प्राप्ति होती है, जो अबाधित है। सत्ता एवं चैतन्य एक ही हैं - -**सत्ता एवं बोधो, बोधो एवं सत्ता'।** यही ब्रह्म है। ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद से रहित है, उसमें प्रत्यक्ष एवं सम्भावित किसी प्रकार का विरोध नहीं है। उसमें आत्मा एवम् अनात्मा का भेद न होने से वह निर्वेयक्तिक है।

सत्य, ज्ञान एवम् अनन्त ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। अपने स्वरूप से किञ्चत्, भी व्यभिचरित न होना सत्य है। ब्रह्म सभी विकारों से सर्वथा परे एक मात्र सत्य है। वह अवबोध रूप है। ज्ञान शब्द अवबोध और प्रकाश का द्योतक है। भूमा होने से, उसमें किसी प्रकार विभाजन न होने से, ब्रह्म अनन्त भी है। उसका एक आस्पद, अक्षय आनन्द स्वरूपता है। उसी आनन्द को पाकर हम आनन्दित होते हैं।

ब्रह्म उत्पति, स्थिति और लयका कारण है या उसका तटस्थ लक्षण है, इस रूप में वह सगुण ब्रह्म या ईश्वर है। वह भी इस उचित जगत् का निमित्तोपादन कारण है। वह विश्व में व्याप्त होकर भी विश्व से परे है।

व्यावहारिक जगत् और सगुण ब्रह्म दोनों की सत्ता मायिक है। भाषा के ही साथ ब्रह्म जगत् रूप में भासता है और ईश्वर द्वारा क्रियान्वित होता है। वास्तविक निर्गुण निराकार ब्रह्म ही परमार्थ सत्ता है। ब्रह्मतम से माया की निवृत्ति होते ही सगुण ब्रह्म एवं जगत् की सत्ता अन्यथा हो जाती है। निराकार ब्रह्म का सर्वोच्च निर्वचन नेति नेति है। शब्द या वाणी की गति उस तक नहीं है परन्तु वह स्वानुभूति गम्य है।

ब्रह्म में जीव और जगत् की अनुभूति अध्यास के कारण है। जो वस्तु जहाँ नहीं है उसकी वहाँ वहाँ बुद्धिमान अध्यास है यह साथ ही समस्त लौकिक एवं वैदिक महत्व से कारण है। ब्रह्म में जीव जगत् का अध्यास माया अपने आवरण एवं विक्षेप शक्ति से करती है जैसे जादूगर कंकड़ का स्वरूप छिपाकर उसमें सिक्के को अध्यस्त कर हमें सिक्का दिखा देता है। जब ब्रह्मज्ञान से माया का निरूपण होता है तो एकमात्र परमार्थ सत्ता ब्रह्म ही रह जाता है जैसे कोई जादुई विद्या का समझ ले तो जादू का प्रयोग करके भी उसे कंकड़ में सिक्का नहीं दिखा सकेगा। वह कंकड़ ही देखेगा। ब्रह्मज्ञानी सर्वत: ब्रह्म ही देखेगा।

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

सत्य - (1) स्वरूप से किकञ्चदपि परिवर्तित न होना
(2) त्रिकालाबाधित होना।

सत् - त्रिकाल में अबाधित सत्ता

अनन्त - कहीं से विभाजित न होना

अध्यास - जिसमें जो वस्तु नहीं है उसमें उस वस्तु की प्रतीति होना

विवर्त - अवास्तविक परिवर्तन (रस्सी में अँधेरे में साँप देखना)

परिणाम - वास्तविक परिवर्तन (दूध से दही बनना)

निमित्त कारण - वस्तु निर्माता

उपादान कारण - निर्माण सामग्री

विश्व व्यापक - विश्व के कण-कण में व्याप्त होना

विश्वातीत - विश्व से परे रहना

आवरण - वस्तु के वास्तव रूप को ढकना

विक्षेप - वस्तु में दूसरी वस्तु दिखना

आभास - जो वस्तु विद्यमान नहीं है, उसकी प्रतीति

अलीक - तुच (जिसकी सत्ता मात्र शब्द में हो) सत्ता जैसे खंपुष्प– आकाश का फूल

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद संस्कृत बरेली 2002 ई.
2. यजुर्वेद संस्कृत बरेली 2002 ई.
3. अथर्ववेद संस्कृत बरेली 2002 ई.
4. ईशादि नौ उपनिषद् – शांकरभाष्य – गीता प्रेस गोरखपुर सं. 2071
   (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एव श्वेताश्वतर उपनिषद्)
5. छान्दोग्योपनिषद् श्रीरामानन्द वेदान्त प्रचारक समिति अहमदाबाद 2025 वि.
6. वृहदारण्यक उपनिषद् श्रीरामानन्द वेदान्त प्रचारक समिति अहमदाबाद 2025 वि.
7. केनाद्युपनिषद् पुरुषसूक्त श्री सूत्र भाष्यम – द सुन्दरम् चैरीटीज मद्रास 1973
   वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र) गीता प्रेस गोरखपुर 2041 सं.

1.9 बोध प्रश्न